हिन्द खोज : अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी पत्रिका, ISSN: 3048-9873
खंड 4, अंक 1, जनवरी – जून, 2026

पार्वती तिर्की की कविताओं में आदिवासी चेतना के स्वर

रीता सूर्यवंशी[1], डॉ. राजाराम परते[2]

[1] शोधार्थी, हिंदी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र
[2] शोध निर्देशक, सहा. प्राध्यापक शा. महाविद्यालय बिजावर, जिला छतरपुर (म.प्र.)
[1,2] महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर (म.प्र.)

शोध सारांश

समकालीन हिंदी कविता की विशिष्ट हस्ताक्षर पार्वती तिर्की के काव्य में निहित 'आदिवासी चेतना' का विश्लेषण करता है। मुख्यधारा के साहित्य में आदिवासियों के प्रति प्रायः एक 'बाहरी' दृष्टि रही है, किंतु तिर्की की कविताएँ स्वयं के अनुभव और अपनी जड़ों के बोध से उपजती हैं। उनका काव्य संग्रह 'फिर उगना' आदिवासी विमर्श को सहानुभूति के धरातल से उठाकर 'स्वानुभूति' और वैचारिक दावेदारी के धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। शोध के मुख्य बिंदु जल, जंगल और जमीन के साथ आदिवासी समाज के अटूट और पवित्र संबंध को रेखांकित करते हैं। लेख में इस बात का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है कि कैसे खनन और तथाकथित विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी स्मृतियों और पुरखा-विरासत से बेदखल किया जा रहा है। कवयित्री के लिए विस्थापन केवल भौतिक नुकसान नहीं, बल्कि एक समूची संस्कृति का विलोपन है। साथ ही, यह शोध उनके काव्य में आदिवासी स्त्री की स्वायत्तता और श्रमशक्ति की पहचान को भी उजागर करता है। पार्वती तिर्की की कविताएँ केवल 'दुख का विलाप' नहीं हैं, बल्कि 'फिर उगना' के माध्यम से वे एक पुनरुत्थानवादी चेतना का संचार करती हैं। उनकी भाषाई बुनावट, जिसमें 'कुड़ुख' शब्दावली का सहज प्रयोग है, भाषाई उपनिवेशवाद को चुनौती देती है। यह काव्य केवल एक समुदाय विशेष की आवाज़ नहीं, बल्कि प्रकृति और मनुष्यता को बचाने का एक वैकल्पिक वैश्विक दर्शन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दः आदिवासी, चेतना, विश्लेषण, संस्कृति, शब्दावली, विस्थापन।

प्रस्तावना

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी अस्मिता, संघर्ष और सांस्कृतिक चेतना का स्वर अब अधिक स्पष्ट और मुखर रूप में उभर रहा है। लंबे समय तक हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में आदिवासी जीवन को प्रायः बाहरी दृष्टि से देखा-समझा गया, जहाँ उनके अनुभवों, पीड़ाओं और संघर्षों का निरूपण सहानुभूति तक सीमित रहा। किंतु हाल के दशकों में स्वयं आदिवासी समाज से आने वाले रचनाकारों ने अपनी जीवनानुभूतियों, इतिहासबोध और सांस्कृतिक स्मृतियों के आधार पर साहित्य को नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। इस संदर्भ में पार्वती तिर्की की कविताएँ विशेष महत्व रखती हैं। पार्वती तिर्की की कविता आदिवासी समाज के भीतर से उपजी हुई आवाज़ है, जिसमें प्रकृति, भूमि, श्रम, स्त्री-अनुभव, सामुदायिक जीवन और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध के स्वर सशक्त रूप में अभिव्यक्त होते हैं। उनकी कविताओं में आदिवासी जीवन केवल विषय नहीं, बल्कि जीवंत संवेदना के रूप में उपस्थित है। जल-जंगल-जमीन से जुड़ा गहरा भावबोध, परंपरागत लोक-संस्कृति, मिथक, गीत और सामूहिक स्मृति उनकी काव्य-चेतना को विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं। यह कविता आधुनिक विकास की प्रक्रिया में आदिवासी समाज के विस्थापन, सांस्कृतिक क्षरण और आर्थिक-सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर भी रचती है। पार्वती तिर्की की कविताओं में आदिवासी चेतना केवल पीड़ा-वर्णन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि आत्मसम्मान, अस्मिता और अधिकार-बोध के साथ उभरती है। उनकी रचनाओं में स्त्री-दृष्टि विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जहाँ आदिवासी स्त्री के श्रम, संघर्ष और आत्मनिर्णय को संवेदनशीलता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार उनकी कविता आदिवासी समाज के बहुआयामी यथार्थ को उद्घाटित करते हुए हिंदी कविता को वैचारिक और संवेदनात्मक स्तर पर समृद्ध करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य पार्वती तिर्की की कविताओं में निहित आदिवासी चेतना के विविध स्वरों का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत उनकी काव्य-भाषा, प्रतीकों, विषयवस्तु तथा वैचारिक दृष्टि के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार उनकी कविताएँ आदिवासी जीवन की अस्मिता, संघर्ष और सांस्कृतिक स्वायत्तता को अभिव्यक्त करती हैं। यह अध्ययन समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी साहित्य की भूमिका और उसके महत्व को रेखांकित करने की दिशा में एक सार्थक प्रयास सिद्ध होगा।

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों और इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में हिंदी साहित्य के भीतर अस्मितामूलक विमर्शों ने एक नई बौद्धिक हलचल पैदा की है। इन विमर्शों में आदिवासी साहित्य एक ऐसे प्रखर स्वर के रूप में उभरा है जो न केवल मुख्यधारा के साहित्य के सौंदर्यशास्त्रीय मानकों को चुनौती देता है, बल्कि वर्चस्ववादी इतिहास बोध के बरक्स एक वैकल्पिक सभ्यतागत दृष्टि भी प्रस्तुत करता है । आदिवासी चेतना का यह उभार महज विलाप या आक्रोश की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह सदियों से हाशिए पर धकेले गए समुदायों द्वारा अपनी 'अस्मिता' (Identity) और 'अस्तित्व' (Existence) के पुनर्दावे की एक वैचारिक परियोजना है । इसी परिदृश्य में पार्वती तिर्की की कविताएँ एक ऐसी नवीन और मौलिक संवेदना के साथ उपस्थित होती हैं, जो अपनी जड़ों की लोक-स्मृतियों से ऊर्जा ग्रहण करती हैं और आधुनिकता के क्रूर दबावों से टकराने का साहस जुटाती हैं ।

झारखंड के कुड़ुख (उरांव) समुदाय से ताल्लुक रखने वाली पार्वती तिर्की समकालीन हिंदी कविता की उस युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसने 'कलम' को 'तीर' के विकल्प के रूप में स्वीकार किया है । उनका आगमन एक ऐसे समय में हुआ है जब आदिवासी समाज जल, जंगल और जमीन की ऐतिहासिक लड़ाई के साथ-साथ अपनी सांस्कृतिक और भाषाई स्वायत्तता के लिए भी संघर्षरत है । उनका पहला कविता संग्रह 'फिर उगना' (2023) मात्र एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि आदिवासी समाज की 'जिजीविषा' और 'प्रतिरोध' का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बनकर उभरा है, जिसे अकादमिक और साहित्यिक हलकों में व्यापक सराहना मिली है । पार्वती तिर्की की कविताओं का विश्लेषण करते समय यह समझना अनिवार्य है कि उनकी चेतना का निर्माण किसी पुस्तकीय ज्ञान से नहीं, बल्कि उस 'वाचिक दुनिया' (Oral World) से हुआ है जहाँ कहानियाँ और गीत साँस लेते हैं । उनकी कविताओं में आदिवासी चेतना के स्वर प्रकृति के साथ उनके जैविक और आध्यात्मिक संबंधों से फूटते हैं। यहाँ प्रकृति कोई जड़ वस्तु या केवल उपभोग का संसाधन नहीं है, बल्कि वह एक जीवित पुरखा है, एक सहिया है, और परिवार का हिस्सा है। यह 'सहियापन' की भावना ही उनकी कविताओं की रीढ़ है, जो उन्हें समकालीन अन्य आदिवासी कवियों के बीच एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती है ।

'फिर उगना': पुनरुत्थान का सौंदर्यशास्त्र और भाषाई स्वायत्तता

पार्वती तिर्की के काव्य संग्रह का शीर्षक 'फिर उगना' (2023) उनके समस्त काव्य-दर्शन का केंद्र बिंदु है। यह शब्द कुड़ुख भाषा के 'ख़ोरेन' (Khoren) का अनुवाद है, जो उस प्रक्रिया को सूचित करता है जब किसी कटे हुए पेड़ की टहनी के पास से एक नई कोंपल फूटती है । यह शीर्षक अपने आप में एक शक्तिशाली राजनीतिक और दार्शनिक रूपक है। यह बताता है कि तमाम दमन, विस्थापन और सांस्कृतिक हमलों के बावजूद आदिवासी समुदाय के भीतर पुनर्जीवित होने की एक अदम्य शक्ति मौजूद है ।

आदिवासी चेतना के संदर्भ में 'फिर उगना' का अर्थ है—विस्मृत स्मृतियों का लौटना, छीनी गई जमीनों पर फिर से अधिकार का स्वप्न देखना और दफन कर दी गई भाषाओं का पुनरागमन । पार्वती तिर्की की कविताएँ इस 'फिर उगने' की प्रक्रिया को शब्द देती हैं। उनकी भाषा अत्यंत सरल, सच्ची और संवादात्मक है, जिसमें किसी प्रकार की कृत्रिम सजावट या बौद्धिक बोझिलता नहीं है । वे जटिल जीवन-स्थितियों को इतनी सहजता से कहती हैं कि पाठक को वह सीधे संवाद की तरह महसूस होता है ।

उनकी कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीक आदिवासी जीवन-बोध के आधारभूत तत्वों से निर्मित हैं। जहाँ आधुनिकतावादी कवि के लिए 'चाँद' या 'सितारा' केवल सौंदर्य के उपकरण हो सकते हैं, पार्वती तिर्की के लिए वे जीवन के नियामक और समय के संकेतक हैं । उनकी कविताओं में धरती, पेड़, चिड़ियाँ और जंगल केवल रूपक नहीं हैं, बल्कि वे एक जीवंत दुनिया की तरह मौजूद हैं जो मनुष्य के साथ निरंतर संवाद करती है ।

जल-जंगल-जमीन: अस्तित्व का आधार और पारिस्थितिक चेतना

आदिवासी विमर्श में 'जल, जंगल, जमीन' का मुद्दा केवल आर्थिक संपदा से जुड़ा नहीं है, बल्कि यह उनकी 'अस्मिता' (Identity) का मूल आधार है । पार्वती तिर्की की कविताओं में यह त्रयी उनके अस्तित्व के पर्याय के रूप में उभरती है। वे मानती हैं कि आदिवासी को बचाने का अर्थ है उसके जल, जंगल और जमीन को बचाना, क्योंकि इनके बिना आदिवासी संस्कृति की कल्पना असंभव है ।

सहियापन: प्रकृति के साथ बराबरी का रिश्ता

पार्वती तिर्की की कविताओं की एक प्रमुख विशेषता प्रकृति के साथ 'सहियापन' का संबंध है। आदिवासी समाज में 'सहिया' का अर्थ है—एक ऐसा मित्र जिसके साथ जीवन के सुख-दुख साझा किए जाते हैं । कवयित्री के अनुसार, उनके पूर्वजों ने जंगल के जीवों से बहुत पहले ही दोस्ती कर ली थी और उन्हें परिवार का हिस्सा माना था । इसी कारण आदिवासी समुदायों में तिर्की (चिड़िया), लाकड़ा (बाघ), कुजूर (औषधीय पौधा), मिंज (मछली) और केरकट्टा (चिड़िया) जैसे नाम उपनाम के रूप में प्रचलित हैं ।

यह 'टोटमवाद' (Totemism) केवल एक परंपरा नहीं है, बल्कि यह प्रकृति के प्रति गहरी कृतज्ञता और उसके साथ एकात्मता का भाव है। 'लाकड़ा' कविता में वे इस रिश्ते को और स्पष्ट करती हैं जब वे कहती हैं कि मनुष्य और बाघ एक ही कुल के हैं । यह चेतना उस मुख्यधारा के समाज के लिए एक चुनौती है जो प्रकृति को केवल उपभोग की वस्तु या 'संसाधन' मानता है । पार्वती तिर्की की कविताओं में प्रकृति कोई 'पेंटिंग' या स्थिर दृश्य नहीं है, बल्कि वह एक सक्रिय कर्ता है ।

जमीन की लूट और ऐतिहासिक अन्याय का चित्रण

आदिवासी जमीन की लूट के संदर्भ में पार्वती तिर्की की कविता 'सोसो बंगला' एक ऐतिहासिक साक्ष्य की तरह है। यह कविता छोटानागपुर क्षेत्र में औपनिवेशिक काल के दौरान हुए अन्याय को एक लोक-कथा के माध्यम से प्रस्तुत करती है । कविता में एक अंग्रेज गाँव के प्रमुख से रहने के लिए मात्र "एक बैल भर की जमीन" माँगता है । प्रमुख इसे एक छोटी सी माँग समझकर राजी हो जाता है, लेकिन अगली सुबह वह अंग्रेज एक मोची को साथ लाता है जो बैल की खाल को धागे की तरह पतला काटकर सत्तर एकड़ जमीन घेर लेता है ।
यह कविता उस 'कानूनी धोखेबाजी' और 'तकनीकी लूट' का प्रतीक है जिसके माध्यम से आदिवासियों को उनकी पैतृक संपदा से बेदखल किया गया । यहाँ "चाँद, भागजोगनी और लोगों" को इस लूट का गवाह बनाया गया है, जो यह दर्शाता है कि यह क्षति केवल व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामुदायिक और वैश्विक है । इस प्रकार की कविताओं के माध्यम से तिर्की विस्थापन और जनसंहार की उन प्रक्रियाओं की ओर ध्यान खींचती हैं जो आज भी 'विकास' के नाम पर जारी हैं ।

वाचिक परंपरा, पुरखा ज्ञान और मिथकों का पुनर्पाठ

पार्वती तिर्की की कविताएँ आदिवासी मौखिक परंपराओं (Oral Traditions) की कोख से उपजी हैं। वे मानती हैं कि वे 'मौखिक दुनिया' के लोग हैं और उनके पास लेखन की एक जमीन पहले से ही पड़ी थी, जिसे उन्होंने बस शब्द दिए हैं । उनकी कविताओं में पुरखा स्मृतियाँ और मिथक केवल अतीत की बातें नहीं हैं, बल्कि वे वर्तमान के संकटों से जूझने की शक्ति प्रदान करते हैं ।

कुडुख सृजन मिथक: ख़ेख़ेल, माख़ा और तोकना

पार्वती तिर्की ने कुडुख समुदाय के सृजन मिथकों को अपनी कविताओं का आधार बनाया है। 'ख़ेख़ेल' (धरती), 'माख़ा' (रात) और 'तोकना' (नृत्य) जैसी कविताएँ आदिवासी विश्व-दृष्टिकोण को समझने की कुँजी हैं।

1. **ख़ेख़ेल (धरती):** इस कविता में धरती के निर्माण की कहानी है, जहाँ कछुआ, केकड़ा और जोंक जैसे जीवों के सहयोग से सृष्टि की रचना होती है । यह मिथक यह संदेश देता है कि सृष्टि का निर्माण किसी एक सत्ता का कार्य नहीं बल्कि एक 'सामूहिक उपक्रम' है। इसमें मनुष्य द्वारा वर्षों तक जमीन जोतकर खेत बनाने और पहाड़ों को सींचने के श्रम को गौरव प्रदान किया गया है ।
2. **माख़ा (रात):** आदिवासी दर्शन में श्रम का बहुत महत्व है, लेकिन श्रम के साथ आराम और संतुलन भी आवश्यक है। इस कविता में बताया गया है कि जब मनुष्य अनंत दिनों तक खेत बनाने के श्रम से थक गया, तब 'धर्मेश' (ईश्वर) ने उसे 'रात' का उपहार दिया । यह चेतना मनुष्य की शारीरिक और आध्यात्मिक सीमाओं के सम्मान की बात करती है।
3. **तोकना (नृत्य):** आदिवासी समाज में नृत्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन राग की अभिव्यक्ति है। पार्वती तिर्की के अनुसार, "चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत है" । 'तोकना' कविता नृत्य की उत्पत्ति को श्रम और सृजन के उल्लास से जोड़ती है, जहाँ रात भर के आराम के बाद मनुष्य जोड़ा फिर से खेत कोड़ने और बीज रोपने में जुट जाता है ।

ये सृजन मिथक यह स्थापित करते हैं कि आदिवासी समाज में 'श्रम' और 'संगीत' के बीच कोई विभाजन नहीं है। वे काम करते हुए भी गीत गाते हैं और रिझते हैं । यह चेतना उस पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध एक प्रति-संस्कृति है जहाँ श्रम को केवल उत्पादन की इकाई माना जाता है ।

आदिवासी स्त्री चेतना: स्वायत्तता और दोहरी प्रताड़ना

पार्वती तिर्की की कविताओं में स्त्री चेतना का स्वर अत्यंत मौलिक और संतुलित है। वे आदिवासी स्त्री को उस 'वीरांगना' के रूप में देखती हैं जो घर और बाहर के मोर्चों पर एक साथ लड़ रही है । आदिवासी समाज में स्त्री को मुख्यधारा के समाज की तुलना में अधिक समानता और स्वतंत्रता प्राप्त है, लेकिन कवयित्री उस बाहरी प्रभाव के प्रति भी सचेत हैं जो इस समानता को नष्ट कर रहा है ।

पितृसत्ता के विरुद्ध सूक्ष्म प्रतिरोध

उनकी कविता 'वे पुरुष' पुरुषत्व के प्रति एक नई दृष्टि प्रस्तुत करती है। वे उन पुरुषों की सराहना करती हैं जो "स्त्रियों से प्रेम करते हुए अधिक स्त्री हुए" यहाँ 'स्त्री होना' कोमलता, संवेदनशीलता और पालन-पोषण की क्षमता का प्रतीक है। कवयित्री का यह चित्रण उस पारंपरिक पितृसत्तात्मक छवि को खंडित करता है जो पुरुष को केवल 'शिकारी' या 'स्वामी' के रूप में देखती है ।

साथ ही, वे उन 'घुसपैठियों' की भी पहचान करती हैं जो आदिवासी समाज में स्त्री और पुरुष के बीच भेद पैदा कर रहे हैं । 'स्त्रियों का शिकार' कविता में वे मुक्का सिंध्रा (स्त्रियों का सामूहिक शिकार उत्सव) के माध्यम से स्त्री शक्ति के पुनर्जागरण की बात करती हैं । पार्वती तिर्की की कविताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि आदिवासी स्त्री का संघर्ष केवल घर के भीतर नहीं, बल्कि उस पूरी व्यवस्था के खिलाफ है जो उनकी जमीन और संस्कृति का 'बलात्कार' कर रही है ।

श्रम और गीत का स्त्री-पक्ष

आदिवासी स्त्री का जीवन श्रम और गीतों से बुना हुआ है। पार्वती तिर्की की कविताओं में धान रोपते हुए, जतरा खेलते हुए या महुआ चुनते हुए गाए जाने वाले गीत स्त्री की रचनात्मकता के प्रमाण हैं । वे कहती हैं कि जब स्त्री गीत गाती है, तो पूरी पृथ्वी उसमें हिस्सा लेती है । यह चेतना स्त्री को प्रकृति की सृजन शक्ति के समांतर खड़ा करती है। उनकी दृष्टि में स्त्री केवल उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि संस्कृति की संरक्षक है जो अपनी 'गुदना' (Tattoo) को मृत्यु के बाद भी अपने साथ ले जाती है ताकि वह अपने कुल की पहचान को अक्षुण्ण रख सके ।

शहरीकरण, आधुनिकता और पहचान का संकट

पार्वती तिर्की की कविताओं में 'गाँव' और 'शहर' का द्वंद्व बहुत ही मार्मिक ढंग से उभरा है। उनके लिए शहर केवल इमारतों का समूह नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी मशीन है जो आदिवासी की 'जंगली' सरलता को कुचल देती है ।

'भुला भूत' और खोए हुए रास्ते का रूपक

उनकी एक अत्यंत प्रभावशाली कविता है 'भुला भूत'। आदिवासी मिथक के अनुसार 'भुला भूत' वह शक्ति है जो जंगल में लोगों को रास्ता भटका देती थी, लेकिन लोग उससे डरते नहीं थे बल्कि उसकी प्रार्थना करते थे क्योंकि वह जंगल का हिस्सा था । लेकिन आधुनिक विकास ने जब जंगलों को काटकर सड़कें और कंक्रीट के मकान बना दिए, तो वह 'भुला भूत' खुद अपना रास्ता भटक गया । अब वह शहर के ईंट-भट्टों में गोल-गोल घूम रहा है और उसके साथ वे लोग भी भटक गए हैं जो पहले उसकी प्रार्थना करते थे । **यह** कविता विस्थापन के उस मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष को उजागर करती है जिसे अक्सर सरकारी आँकड़ों में छोड़ दिया जाता है। शहर में जाकर आदिवासी केवल अपनी जमीन नहीं खोता, बल्कि वह अपना 'रास्ता' (जीवन-दर्शन) भी खो देता है । वे अब "ईंट-भट्टों में गोल-गोल घूम रहे हैं", जहाँ उनके घर लौटने का रास्ता हमेशा के लिए बंद हो गया है ।

'सोशल बुली' और भाषाई पहचान का संकट

पार्वती तिर्की अपनी कविताओं में उस 'सोशल बुली' (सामाजिक प्रताड़ना) की ओर संकेत करती हैं, जिसके कारण आदिवासी युवा अपनी मातृभाषा बोलने में हिचक महसूस करते हैं उन्हें "जंगली" और "असभ्य" कहा जाता है, जिससे उनके भीतर अपनी संस्कृति के प्रति हीनता का भाव पैदा किया जाता है कवयित्री इस अपमान का उत्तर गर्व के साथ देती हैं। वे कहती हैं कि जो लोग गीत गाते हैं, वे कभी "भीड़ का हिस्सा नहीं हुए" । उनके लिए 'जंगली' होना कोई गाली नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहने का प्रमाण है ।

दार्शनिक आयाम: सामूहिकता, अहिंसा और स्वायत्तता

पार्वती तिर्की की कविताएँ एक वैकल्पिक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करती हैं, जो 'सामूहिकता' (Collectivism) और 'अहिंसा' (Non-violence) पर टिका है। आदिवासी समाज में 'अखड़ा' वह स्थान है जहाँ कोई दर्शक नहीं होता, सब कर्ता होते हैं । यह पूर्ण भागीदारी का दर्शन है। उनकी कविताओं में 'मदत' व्यवस्था का उल्लेख है, जहाँ पूरा गाँव एक-दूसरे के खेत में काम करने में मदद करता है ।

'धर्म की ध्वजा' और भीड़ का नकार

वे अपनी कविता 'गीत गाते हुए लोग' में उन लोगों की आलोचना करती हैं जो "धर्म की ध्वजा" उठाए दूसरों को "जंगली" कहते हैं आदिवासी चेतना किसी संगठित धर्म या ध्वजा की मोहताज नहीं है। उनके लिए मनुष्य स्वयं जंगल का हिस्सा है। कवयित्री कहती हैं कि "गीत गाते हुए लोग कभी भीड़ का हिस्सा नहीं हुए" । यहाँ 'भीड़' उस विवेकहीन समूह का प्रतीक है जो नफरत और हिंसा फैलाता है। इसके विपरीत, 'गीत गाने वाले लोग' अपनी मौलिकता और अहिंसक प्रवृत्ति को बनाए रखते हैं ।

'अप्प दीपों भव' और आत्मनिर्णय

आदिवासी साहित्य का मूल मंत्र है—अपनी लड़ाई खुद लड़ना और अपनी बात खुद कहना । पार्वती तिर्की की कविताएँ इसी 'अप्प दीपों भव' के सूत्र को चरितार्थ करती हैं। वे मुख्यधारा के साहित्यकारों द्वारा आदिवासियों के आदर्शीकरण या उन पर थोपे गए 'सभ्य' मानदंडों को नकारती हैं । उनकी चेतना एक ऐसी स्वायत्तता की माँग करती है जहाँ आदिवासी समाज को अपनी विकास की परिभाषा खुद तय करने का अधिकार हो

निष्कर्ष

पार्वती तिर्की की कविताओं में आदिवासी चेतना के स्वर एक ऐसे समय में गूँज रहे हैं जब पूरी दुनिया पर्यावरणीय विनाश और अमानवीय शहरीकरण की चपेट में है। उनकी कविताएँ केवल एक समुदाय का विलाप नहीं हैं, बल्कि वे पूरी मानवता के लिए 'बचाव' और 'रचाव' का एक ब्लूप्रिंट प्रस्तुत करती हैं । 'फिर उगना' का संदेश यह है कि विनाश अंतिम सत्य नहीं है; जब तक जड़ें सुरक्षित हैं, तब तक नई कोंपल फूटने की संभावना बनी रहेगी । उनकी चेतना का सबसे बड़ा योगदान यह है कि वे आदिवासी समाज को 'दयनीय पात्र' के बजाय 'गौरवशाली पुरखा' के रूप में स्थापित करती हैं। वे बताती हैं कि "सृष्टि के अनुशासन से कोई भी बाहर नहीं है, कोई छोटा-बड़ा, महत्वपूर्ण या बेकार नहीं होता" । उनकी कविताएँ हमें उस 'अखड़ा' की ओर लौटने का आह्वान करती हैं जहाँ जीवन एक सामूहिक उत्सव है और जहाँ मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका एक विनम्र हिस्सा है । पार्वती तिर्की का काव्य-संसार उस 'संवाद' की कोशिश है, जिसके जरिए विविध जनसंस्कृतियों के बीच तालमेल और विश्वास का रिश्ता बनाया जा सके । यह हिंदी कविता की एक ऐसी अनिवार्य उपलब्धि है जो आने वाले समय में आदिवासी विमर्श को और अधिक परिपक्व और व्यापक धरातल प्रदान करेगी।

संदर्भ

1. www.raijmr.com, https://www.raijmr.com/ijrsml/wp-content/uploads/2023/01/IJRSML_2022_vol11_issue_12_Eng_01.pdf
2. समकालीन हिन्दी साहित्य और विमर्श – आदिवासी विमर्श – डॉ. एस. विजया https://ginajournal.com/samkalin-hindi-sahitya-or-vimersh/
3. हिन्दी कविता के भूगोल को विस्तार देती हैं पार्वती तिर्की की कविताएँ, https://rajkamalprakashan.com/blog/post/parwati-tirkey-sahitya-akademi-yuva-award-2025-press-release
4. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, https://old.rrjournals.com/wp-content/uploads/2016/11/35-38_RRIJM20160111011.pdf
5. हिंदी की आदिवासी कविताओं में स्थानीयता के विभिन्न स्वर: महेश कुमार
6. समय के यथार्थ के साथ जिरह करनेवाली कविताएं : रमेश अनुपम - वागर्थ,
7. बात जल-जंगल-जमीन और आदिवासी समुदाय के अस्तित्व और अस्मिता की - Feminism in India hindi, https://hindi.feminisminindia.com/2023/07/
8. पार्वती तिर्की की पाँच कविताएँ - Rajkamal Prakashan, https://rajkamalprakashan.com/blog/post/parwati-tirkey-selected-poems-from-fir-ugana-poetry-book-sahitya-akademi-yuva-purskar-2025
9. गिदनी : पार्वती तिर्की - वागर्थ, https://vagartha.bharatiyabhashaparishad.org/gidani-kahani/
10. आदिवासी साहित्य में आदिवासी समाज व संस्कृति का विवेचनात्मक अध्ययन -सीमा मेनारिया - अपनी माटी, https://www.apnimaati.com/2021/12/blog-post_16.html

11. सबने उनके लिए जगह बनाई... Parwati Tirkey की 'फिर उगना' | Sanjeev Paliwal - YouTube, https://www.youtube.com/watch?v=iRUbzOAXgtI
12. गीत गाते हुए लोग कभी भीड़ का हिस्सा नहीं हुए | Parvati Tirkey Poetry - YouTube, https://www.youtube.com/watch?v=z4YVTMFoieU
13. 'आलोचना' सह पाएगी अपनी आलोचना! | हिन्दवी बेला - Hindwi, https://hindwi.org/bela/aalochana-sah-payegi-apni-aalochana-prateek-ojha